THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182103

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6|V31C Accession No. G.H.2006

Author वर्मा, रामकुमार - | 1994 V-S.

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

१६७

चंद्रकिरण

संपादक
सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

कुछ चुनी हुई काव्य की अनुपम पुस्तकें

दुलारे-दोहावली	।।), १)	लतिका	१), १॥)
बिहारी-रत्नाकर	५)	शिवा-बावनी	।)
मतिराम-ग्रंथावली	२॥), ३)	भ्रमर-गीत-सार	१)
देव-सुधा (महाकवि देव)	१), १॥)	अन्योक्ति-कल्पद्रुम	१), १॥)
कवि-कुल-कंठाभरण	॥), १)	अष्टयाम	≡)
आत्मार्पण	।॥), १)	कविप्रिया	॥=)
उषा	॥=), १=)	छत्रसाल-ग्रंथावली	१)
किंजल्क	।॥), १)	गंगा-लहरी	=)
नल नरेश	२॥), ३)	गीतावली	१)
पद्य-पुष्पांजलि	१॥), २)	दीनदयाल-ग्रंथावली	१)
पराग	॥), १)	ब्रज-विलास	३)
परिमल	१॥), २)	दृष्टिकूट	॥)
पूर्ण-संग्रह	३।॥), २)	देव और बिहारी	१॥), २)
पंछी	।=), ॥)	पद्माभरण	≡)
भारत-गीत	॥।=), १।=)	जगद्विनोद	१)
रति-रानी	१॥), २)	कल्पलता	१॥), २)

हिंदुस्थान-भर की पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १६७वाँ पुष्प

चंद्रकिरण

लेखक

द्वितीय देव-पुरस्कार-विजेता

प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा एम्० ए०

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द ॥।=)] सं० १९९४ वि० [सादी ।=)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

स्मृति-चिह्न

दो शब्द

चित्ररेखा के बाद मेरी स्फुट कविताएँ दिन-भर के परिश्रम से लौटते हुए किसी किसान के गीत हैं। इनमें भावना की जितनी स्वतंत्रता है, उतनी मेरे अन्य गीतों में संभवतः न हो। उल्लास और करुणा इनमें अपनी चरम सीमा पर पहुँचने का उपक्रम कर रही है, क्योंकि वहाँ प्रयास और अध्ययनशीलता की उपेक्षा है। वन-प्रांत के किसी एकांत स्थान में एक पक्षी जैसे चहक उठा है, यही मेरे हृदय की भावना है।

उमंग से बिखरी हुई मेरी यह ध्वनि कितनी दूर तक जायगी!

रानी-कुटीर
१८ मई, १९३७

रामकुमार वर्मा

चंद्र-किरण

यह चंद्र-किरण भू पर आई।
साहस तो देखो, नभ-वासिनि
पृथ्वी पर यह नव-छवि लाई।
एकाकीपन का लिए भार
तम के प्रदेश को किया पार,
प्रतिक्षण विस्तृत हो रेख-रूप,
कर दिया विमल तन तार-तार।
मेरे दृग में खोकर उसने
बोलो, क्या जीवन-निधि पाई? ॥यह०॥
तज नक्षत्रों से पूर्ण लोक,
आलोक छोड़ निज ज्योति रोक,
मेरी पृथ्वी, जो है मलीन,
जिसमें है पीड़ा, रुदन, शोक,
उसमें आने के हेतु न-जाने
क्यों इतनी यह ललचाई? ॥ यह० ॥

मधुयामिनी

शून्य से उन्मुक्त कर
करुणा-कणों की यामिनी !
भावना की मुक्ति मुझको
दे सकोगी स्वामिनी ?
वायु की साँसें बिखरकर
पा रहा निर्वाण है ;
यह सुरभि भी वायु की है
बन रही अनुगामिनी ।
यदि मुझे आभास देते—
हो कि बंधन सत्य है,
घोर घन-प्राचीर में तो
क्यों व्यथित है दामिनी ?
दो मुझे वह सत्य, जो
संसार का शासन करे ;
चिर दुखों की रात्रि भी
मुझको बने मधुयामिनी ।

विमल रजनी

यह विमल रजनी तुम्हारी।
विश्व - जागृति पर बनी है
आवरण ले शांति सारी ॥ यह० ॥
मौन की निश्चल परिधि में
सो गए तरु - वृंद सारे;
वृद्ध पृथ्वी की विवशता
देखते हैं तरुण तारे।
या गगन ने आरती सज
सब दिशाओं से उतारी ॥ यह० ॥
प्रेम की श्यामा समाधि
विशाल भू पर स्थिर हुई है;
सूर्य का उत्ताप खोकर
वायु शीतल फिर हुई है।
या हमारी साँस तुमने
रजनि के तन में सँवारी।
यह विमल रजनी तुम्हारी।

परिचय

मैं तुम्हारे नूपुरों का हास।
चरण में लिपटा हुआ
करता रहूँ चिर वास।
मैं तुम्हारी मौन गति में
भर रहा हूँ राग;
बोलता हूँ यह जताने
हूँ तुम्हारे पास।
चरण-कंपन का तुम्हारे
हृदय में मृदु भाव
कर रहा हूँ मैं तुम्हारे
कंठ का अभ्यास।
हूँ तुम्हारे आगमन का
पूर्व लघु संदेश;
गति रुकी, तो मौन हूँ,
गति में अखिल उल्लास।
मैं चरण ही में रहूँ
स्वर के सहित सविलास;
गति तुम्हारी ही बने
मेरा अटल विश्वास।

करुण-कथा

कोई तारों से पूछे मेरी करुणा की बात;
दृग से तारों की दूरी कितनी कम! किसको ज्ञात?
मैं बैठा भावों के क्षण पर, गति थी कितनी मंद;
किंतु न-जाने बीत गई कब यह वियोग की रात!
मिलन क्षितिज-रेखा-सा केवल दृष्ट किंतु दुष्प्राप्य
यह निष्फल उच्छ्वास, शिशिर का एकाकी-सा वात।
वह पक्षी, जो अर्ध-निशा में है तरु का स्वरकार,
कँपा रहा मेरे दुर्बल प्राणों-सा सोया पात।
तारे डूबे, किंतु कथा उतनी ही विरल असंख्य;
धूमिल-सा, बेसुध-सा आया है यह व्यर्थ प्रभात।

साधना

यह तुम्हारी साधना।
सृष्टि का प्रत्येक स्वर
संवाद सुख का है बना।
इस विरह के एक क्षण में
मिलन का संदेश है;
किस तरह अपनी बताओ,
मैं करूँ आराधना?
मौन हूँ मैं, किंतु वह तो
शांति की है मूर्छना;
मैं तुम्हीं में लीन, मुझको
साँस से मत बाँधना!

किरण-कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं;
नव-प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं।
सिद्धि पाकर भी तपस्या-साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

व्योम के उर में अगाध भरा हुआ है जो अँधेरा,
और जिसने विश्व को दो बार क्या, सौ बार घेरा,
उस तिमिर का नाश करने के लिये मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया;
सूर्य का संदेश लेकर रात्रि के उर में समाया।
पर तुम्हारा स्नेह खोकर मैं तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

करुणा की छाया

करुणा की आई छाया।
कोकिल ने कोमल स्वर भर कुंजों-कुंजों में गाया।
जब विश्व व्यथित था, तुमने अपना संदेश सुनाया;
तरु के सूखे-से तन में नव-जीवन बनकर आया।
मेरी साँसों पर जीवन कितनी ही बार झुलाया,
पर इतने रूपों में भी क्या मैंने तुमको पाया?
यह जीवन तो छाया है, केवल सुख-दुख की छाया;
मुझको निर्मित कर तुमने आँसू का रूप बनाया।
करुणा की आई छाया।

तृप्ति

यह तो है परिचित मधुर साँस।
जिसमें अपने को विस्मृत कर
सोए हैं कितने दिवस-मास।
मेरे तन को छू वह तरंग,
है बैठ गई बन स्मृति-स्वरूप;
वह भूले दिन की अवधि आज
लगती है कितने पास-पास।
मैं भूल गया हूँ मृत्यु आज,
जीवन में इतना हुआ लीन;
अब दुख पाने के लिये मुझे
करना पड़ता है अति प्रयास।
यह तो है परिचित मधुर साँस।

जीवन के पल

जीवन के पल क्यों विफल हुए ?
रजनी की आँख-मिचौनी में
तारे ज्योतित हो सजल हुए।
यह अंधकार कैसे जीवन का नाश कर सकेगा, बोलो ?
मिट्टी के नीचे से निकले
ये पुष्प सजीले सदल हुए।
यदि मृत्यु सत्य है भी, तो मैं उसमें कैसे खो जाऊँगा ?
तुमको पाकर मेरी कविता के
स्वर कितने ही विमल हुए।
जीवन के पल क्यों विफल हुए ?

तारों का संगीत

तारों का अविरत संगीत।
पृथ्वी की गति से मिलकर
करता भविष्य को भी अतीत।
यही अनाहत ध्वनि की धारा,
जिसमें डूबा विश्व हमारा।
आज संतरण करने में
मन को कर देती है भयभीत।
मेरी इच्छा की वैसी गति
क्यों न प्राप्त कर ले वह अविरति।
मेरे लघु भविष्य को कर दे
विरति-शक्ति से परम पुनीत।

वैषम्य

मैं सुखी और यह विश्व विकल।
तारे किस आशा से प्रतिदिन
शून्य गगन में रहे निकल।
इस तृष्णा का पाया न अंत,
फिर-फिर क्यों कुसुमित हो वसंत;
बादल का लेकर विकृत रूप
क्यों अस्थिर हो सागर अनंत।
उषा, न कोई मिला, कर चुकी
कितने ही शृंगार विफल।
मेरे जीवन की रेख श्वास
अपनेपन से ही कर विलास,
होकर अपनी ही परिधि मंजु,
रोती-हँसती बन रुदन-हास।
प्रतिपल चलकर भी यह मुझको
बना चुकी अविकल, अविचल।
मैं सुखी और यह विश्व विकल।

अनुभूति

आज देख ली अपनी भूल।
सुंदरता के चयन हेतु
तोड़े मुरझानेवाले फूल।
जिस जीवन में हूँ मैं अथ से,
निकल रहा साँसों के पथ से;
रात्रि-दिवस की श्याम-श्वेत गति
समझ रहा हूँ मैं अनुकूल!
समय हँसा, सुख उसको जाना,
यह जग तो था एक बहाना;
ये ग्रह, ये नक्षत्र कुछ नहीं,
नभ में हँसती है कुछ धूल!
आज देख ली अपनी भूल।

समर्पण

पहनो तो मेरा यह हार।
विरह - रात्रि के तारे ही
समझो इन कलियों को सुकुमार !
सुमन हो गईं कलिकाएँ ये,
अब तुमसे क्यों सकुचाएँ ये;
अर्ध रात्रि में इन्हें धो चुकी
है मेरी आँसू की धार।
देर हुई क्यों आते-आते,
मुझसे तो न अरे सकुचाते;
देखो, जीवन की ज्वाला में
रक्षित रखा तुम्हारा प्यार।
पहनो तो मेरा यह हार।

वीचि-विलास

यह जीवन वीचि-विलास हुआ।
फेनिल के अस्फुट अधरों में
कलकल का कोमल हास हुआ।
तरुराजि बिंब पल-पल कंपित,
उर का स्पंदन है बार-बार;
लहरों की विस्तृत परिधि मंजु
आकांक्षा बढ़ती है अपार।
तरलित हिलोर का ललित नृत्य
अविरल-अविरल हो पास हुआ।
मेरे सुख-शशि की रुचिर रश्मि
आलोकित कर दो बार-बार;
जीवन हो नव-जीवन स्वरूप
उज्ज्वल मंजुल होकर अपार।
मैं आज कह सकूँ अपने में ही
अपनेपन का वास हुआ!
यह जीवन वीचि-विलास हुआ।

मिलन

वायु रुकी, संध्या सिमटी, तम घिरा, और मैं हुआ शांत ;
अह, इतने तारे हैं, फिर भी क्यों एकाकी है दिशांत ?
उस दिन मैंने सुनी तुम्हारी स्वरित साँस की मृदु पुकार ;
सरस सुरभि भी दे न सकी है उसकी अनुकृति उस प्रकार ।
वह स्मृति प्रतिक्षण पर बैठी है
बढ़ा रही है समय-भार ;
देवि, वायु रुक गई, घिरा तम,
तुम तो आ जाओ उदार ।

जिज्ञासा

नीरव निशा, हो श्रांत तुम ?
तिमिर चारों ओर है ? ना
भाग्य है मेरा यही ;
क्योंकि तुम चुप हो, यही
विचलित व्यथा मैंने सही।
वह उड़ा खद्योत आशा के
प्रकाशित विंदु - सा,
और शीतल साँस - सी
यह वायु चुप होकर बही।
मैं तुम्हारे पास हूँ
फिर भी बनी हो क्लांत तुम ॥ नीरव० ॥
क्या विरह की अवधि मानूँ
यह समस्त विभावरी ?
यह गगन-गंगा समझ लूँ
आँसुओं से है भरी।
ये निशा के प्रहर मानो
वेदना के बंधु हैं ;

हो रहे प्रतिक्षण भयानक
और भीषण सुंदरी।
मौन होता हूँ, कहो,
अब भी रहोगी शांत तुम?

दीपक से

तुम्हें बुझाने का साहस क्यों करे अरे, साँसों की धारा ;
तुम दीपक हो, जलना ही तो जग में है अस्तित्व तुम्हारा।
यह तो है संसार, यहाँ पर जल-जलकर ही मर जाना है ;
सन्तम बना अपना भविष्य, जग को प्रकाशमय कर जाना है।

आओ, हम दोनो जलकर
छोटा-सा क्षण आलोकित कर दें ;
अपनी पीड़ा के प्रकाश से
जग को क्रीड़ा का अवसर दें।

जीवन

मौन झींगुर उस अँधेरी रात का हैं गान करते ;
और तारे क्या परस्पर देखकर पहचान करते ?
सुमन अपने रूप का, अपनी सुरभि का दान करते;
और अनिल तरंग अविदित रूप से मधु-पान करते।

मैं उठा हूँ जाग, यह जग
मृतक-सा क्यों रह गया है ?
एक ही जीवन अनेकों
मृत्यु पर ज्यों बह गया है ?

यह निशा काली—पवन ने साँस ली मानो ठहरकर ;
पंख की ध्वनि—पक्षि-शावक का ध्वनित टूटा हुआ स्वर।
और पत्ते का पतन ! जो अचर से कुछ हो गया चर;
देखकर मैंने कहा अः यह निशा का मौन अंबर।

शांत है, जैसे बना है साधु-
संत निरीह निश्छल ;
किंतु कितने भाग्य इसने
कर दिए हैं नष्ट, निर्बल।

यह जगत है ! शांति में गोपित किए हैं पाप प्रतिक्षण;
मृत्यु की छाया निशा-सी छू रही अविराम कण-कण ।
हाथ को निर्बल बनाने के लिये है स्वर्ण-कंकण;
दे चुका तम-मृत्यु को नभ तारिका जीवन समर्पण ।
च्युत हुए पत्ते-सदृश पल में
कभी तुम टूट जाओ;
यदि सहो, तो शांति, या फिर
नित्य पूर्ण अशांति पाओ ।

विस्मरण

मैं तुमको पाकर गया भूल।
पा उषादेवि की निधि पहना
संध्या का नश्वर-सा दुकूल ॥ मैं० ॥
क्यों मुझे दृष्टि आया पथ में
इतने तारों का चक्रव्यूह;
मैं भूल गया, मेरी आत्मा में
भरा ज्योति का है समूह।
भूला, कलियों के गौर गात पर
हाथ रखा, चुभ गए शूल ॥ मैं० ॥
जिसमें मैं पड़कर भूल गया,
वह नहीं दिखा मुझको प्रवाह;
जग इंद्र-धनुष पर चितवन-शर
रख हुआ स्वयं मैं लक्ष्य आह!
यह चलित विश्व आवर्त एक,
जिसमें चक्रित गति है, न कूल।
मैं तुमको पाकर गया भूल।

आत्मरात्रि

यह निशा सभ्रांत।
तारकों की दृष्टि है किस
शून्य में अति शांत।
यह प्रकाश वसुंधरा का
स्वप्न है साकार;
कुछ क्षणों के हेतु ज्योतित
कर रहा दृग - प्रांत।
सिद्धि में भी साधना की
हो रही है चाह;
मैं तुम्हारे पास भी क्यों
बन गया उद्भ्रांत?
आह! इस नियताप्ति में भी
है निराशा देव!
हो सके, कर दो न अभिनय
प्रेम - पूर्ण सुखांत!

रहस्य

जीवन ही करुण कथा है।
शब्दों में सुंदरता है, अर्थों में भरी व्यथा है।
फूलों की मत्त सुरभि-सी जो फूलों से हट जावे;
ऐसा यह लघु जीवन है, जो जीते-जी घट जावे।
जिसकी केवल स्मृति रहकर मन में चुभती रहती है;
दृग के कोमल कोने में करुणा-धारा बहती है।
केवल अभिनय ही तो है, जीवन है छोटा अभिनय;
तस्कर-सा जिसमें विचलित साहस के पीछे है भय।
यह जीवन समय-भवन में टूटा-सा टेढ़ा जाला;
जो रेशम-सा दिखता है, पर जीर्ण अंत में काला।

वसंत

यह वसंत आया।
कलियों ने अपना अवगुंठन
खुला हुआ पाया।
अपना स्वर वितरण कर उन
श्यामा प्रियंगु-कुंजों को
भ्रमरों ने मेरे जीवन का
एक गान गाया।
क्षितिज-परिधि में नव किरणों की
भरकर मुकुलित माला
रवि पृथ्वी को जीवन का
उपहार - हार लाया।
पल्लव झुककर रक्षित रखते
हैं सुमनों की शोभा;
उसी भाँति मुझ पर हो चिर
नव यौवन की छाया।
यह वसंत आया।

जीवन का रहस्य

जीवन की कैसी कठिन साध!
यह लघु उर, यह संसार विषम,
दोनों में समता कितनी कम,
कैसे सुख पावे मन, जिसमें
आशा पाती रहती उद्गम।
सुख (जीवन का विकसित विलास)
जब भूल चुका अपनी परिमिति,
कैसे बंधन में रहे सदा,
उसमें होगा मृगजल का भ्रम!
कैसे तारों के लघु विचार
समझे नभ का सागर अगाध?
जीवन की कैसी कठिन साध।

वसंत-श्री

तू नव-वसंत-श्री, मैं वसंत।
तरुओं के तन की तू उमंग,
मैं पल्लव का परिधान-वृंत।
वह नव हरीतिमा सभी ओर
आती है ले सुषमा - हिलोर,
जिसमें तू सोई सुख-विभोर
मैं अलि-गुंजन मधुमय अनंत ॥तू नव०॥
दोनों की है अनुराग - वृष्टि,
जिससे सजती संपूर्ण सृष्टि।
जिस कलिका की सुकुमार दृष्टि,
उस कलिका का मैं कुसुम कंत।
तू नव - वसंत - श्री, मैं वसंत।

निराशा

इस क्षणिक रंग में राग कहाँ ?
सुमनों की सीमित परिधि-रेख में
सौरभ का अनुराग कहाँ ?
वह तो करता है नभ-विहार,
बंधन है जग में सदा भार।
पृथ्वी के लघु सुख-साधन में
मेरे जीवन का त्याग कहाँ ?
यह रूप गंध का आकर्षण
मन विचलित करता है क्षण-क्षण,
पर कहाँ सुमन-सा हृदय और
इस आकर्षण की आग कहाँ !
इस क्षणिक रंग में राग कहाँ ?

एक प्रश्न

घटा घुमड़कर आई।
घोर घनी घहरी घिरकर भी
पूरी बरस न पाई!
नभ की रंगभूमि पर उसने
विद्युत में नर्तन कर,
हँसकर मुक्तावलि की माला
बूँद - बूँद बरसाई!
उसे ज्ञात हो गया किंतु,
मिथ्या है नभ में रहना;
इस पृथ्वी पर गिरकर उसने
मेरी - सी गति पाई।
शांति नहीं है इस बंधन में
किसी भाँति रहकर भी;
आज घटा ने रो - रोकर यह
दारुण कथा सुनाई।
प्रभो, अश्रु क्यों दिए आँख को
क्यों करुणा इस मन को;
सुलझाने के बदले तुमने
मेरी गति उलझाई।

आँसू

पीड़ा को दो भागों में कर, तुम दो बूँदों में कहाँ चले ;
क्यों मिलते धूल-कणों में हो, जो मेरे दृग में सदा पले !
क्या मेरी करुणा के दो फल गिर पड़ने ही के लिये फले;
मन में तो थे तुम ज्वाल रूप, आँखों में पानी बन निकले !
इस बिंदु परिधि से लहराता है, पीड़ा का सागर प्रतिपल ;
इस जल की नीव बनाकर ही तो खड़ा हुआ है ताजमहल ।
मैं भूल गया, मेरे आँसू से यह जग है क्यों महाविकल ;
जो मेरा है दृग-बिंदु, वही है प्रकृति-तत्त्व का जल अविकल !
पर तुम आँसू ही रहो, बनो मत प्रकृति-तत्त्व के प्राण भले ;
यह बतला दो, पीड़ा को दो भागों में कर तुम कहाँ चले !

आत्मा के प्रति

भ्रमर ! तुम्हारा यह अभिसार।
व्यंजित करता है पृथ्वी की
नश्वरता से शाश्वत प्यार।
कलिकाओं के विविध लोक में
हुए अवतरित हर्ष-शोक में;
करना पड़ा विवश हो तुमको
अपने जीवन का गुंजार।
देवार्पित जो भाव-सुमन हैं,
वही तुम्हारा इष्ट-सदन है;
यदि अनंत में उड़ो, तुम्हें
पुलकित हो देखगा संसार।

ओ कोकिल !

वह बोल उठी कोकिल अधीर !
मेरे वसंत के भीतर भी
दिख पड़ी शिशिर की क्या लकीर ?
उसने तो मधु-ऋतु में गाया,
पर क्यों उसका उर भर आया,
क्या देखी उसने धूल, जहाँ मेरी प्रेयसि का है शरीर ?
उसने निज स्वर इस ओर किया,
कुसुमित तरु को झकझोर किया,
गिर पड़े भूमि पर मतवाले-से
कामदेव के सुमन-तीर ।
मत बोल, मौन हो ओ अधीर !
यह निशा - शांत है यह समीर ।
मेरी प्रेयसि का मधुर स्वप्न
कर्कश स्वर से मत आज चीर ।
वह बोल उठी कोकिल अधीर !

उल्लास

लो, मैं आया।
क्या यह तृण ? तृण लघु है, पर
पृथ्वी के उर के है समीप;
यह शिला विरह - सी बड़ी, किंतु
कोमलता में उसके प्रतीप।
मैं इसीलिये तो उस पर उज्ज्वल
ओस - विंदु हो छाया। लो, मैं आया।
निद्रा में है अंधकार,
उतना विस्तृत जितना न व्योम;
एक बार ही व्याप्त हुआ
जिससे रजनी का रोम - रोम।
मैं इसीलिये तो स्वप्न-रूप हो
उसमें आज समाया। लो, मैं आया।

रूप-साम्य

यह मेरी है नियमित पुकार।
रवि-शशि की किरणों में ज्योतित
हो कण-कण में करती विहार।
निशि में जब तम का था प्रसार,
खद्योत उड़े थे तीन-चार,
तम-सागर में था डूब रहा
संसार लिए निज नींद-भार।
तब एक पपीहे की ध्वनि में
मैं विकल हो उठा एक बार।
यह मेरी है नियमित पुकार।

कली की आत्मकथा

देव, मैं प्रभात की प्रमोदिनी प्रभाती हूँ ;
वायु की तरंग पर सौरभ में गाती हूँ।
जग में कठोर कष्ट, पीड़ा, पाप छाया है ;
मैं तो दो दिन का अभिसार किए जाती हूँ।
किंतु यह बोलो, कैसी है तुम्हारी छलना,
सौरभ लुटाते ही कली न रह पाती हूँ !
लतिका के बंधन में बंदिनी बनी हूँ मैं,
हा स्वतंत्र होते ही कहो, क्यों कुम्हलाती हूँ ?
बंधन ही एक मेरे जीवन का नाम है;
रेशम - सी देह संदेह - भरी पाती हूँ।
हाय ! कुछ देर और जीवन ही रखते,
मैं पदारविंद पर देखो, मुरझाती हूँ।

मैं और तुम

मैं तुम्हारे पास हूँ।
तुम सुमन हो, मैं तुम्हारी
मंद मुग्ध सुवास हूँ।
चंद्रिका की ज्योति में जब
व्योम हँसता है अहा!
तब तुम्हारे वायु-स्वर में
मैं प्रकृति की साँस हूँ।
सो रहा संसार जब
निज साँस की शय्या बना,
सब सजग रह तारिका-सी
ज्योति में उल्लास हूँ।
इस जगत में मौन रहना
मृत्यु का संवाद है;
सुख तथा आनंद के
अधिवास में मधु-मास हूँ।

व्यथा

जागते बीती अँधेरी रात।
मौन-कारागार में बंदी रही प्रिय बात।
पूर्व स्मृतियों की दिशा है, आह कितनी दूर!
चल रहा हूँ, किंतु उसका अंत है अज्ञात।
नेत्र की छोटी परिधि में ज्योति-वामन व्याप्त;
खोजता हूँ विश्व के अतिरिक्त जीवन-त्रात।
यह समीरण, आलि, आ तू कह, कहाँ वे आज?
आज आते हैं बने क्या वे प्रणय के प्रात?

अभिनय

मेरे अभिनय का भव्य भार।
डालो मत इस संसृति पर, यह तो
रह न सकेगी दिवस चार।
मेरी आत्मा के मुक्त राग—
से गुंजित है नभ सानुराग;
यह पृथ्वी, यह तो कष्ट और
पीड़ा ही की है शब्दकार।
मेरे कार्यों की अटल रेख
चिर समय सकेगा उसे देख;
यह सुख-दुख का पट-परिवर्तन
मैं ही हूँ उसका सूत्रधार।
यह मोह और यह स्वार्थ-भाव
केवल है इच्छा का प्रभाव;
जिसकी गति का यदि है प्रवेश,
तो उसका है प्रस्थान द्वार।

चिर-विदा

आह ! यह पल्लव पुराना।
वायु-झोंके में भटकने को उसे है आज जाना।
प्राण, वे स्मृतियाँ हरी
सब सूखकर पीली पड़ी हैं;
याद आता है कभी क्या
कोकिला का कंठ पाना?
और विद्युत - सा समय
चंचल विकल अति शीघ्रगामी
आज तेरे पतन के स्वर में
भरेगा मुक्त गाना।
क्या क्षणिक जीवन विकलता
के कणों से ही बना है!
श्वास का आना बना, क्षण एक
ही में लौट जाना।
पीत अवगुंठन खुलेगा
आज कलिका के वदन का;
उस समय तुझको पड़ेगा
मृत्यु का चिर - पथ सजाना।

प्रार्थना

मेरे जीवन में एक बार
तुम देखो तो अपना स्वरूप;
मैं तुममें प्रतिबिंबित होऊँ,
तुम मुझमें होना ओ अनूप!
राका-शशि अपनी रश्मि-माल
जब रजनी को पहनाता हो,
अथवा जब फूलों के तन से
प्रेयसि सुगंधि का नाता हो,
जब विमल ऊर्मि में लघु बुद्बुद
उल्लास-पीन लहराता हो,
जब तरु से लतिका का अंतर
मधु-ऋतु में कम हो जाता हो,
उस समय हँसो, तो बरस पड़े
ओसों में विश्वों का स्वरूप;
मैं तुममें प्रतिबिंबित होऊँ,
तुम मुझमें होना ओ अनूप!